शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-1, Year-1,

15 Jan-2010

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

-डॉ० राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कॉलेज, अगरा, उ.प्र.

www.shodh.net

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

- डॉ० राकेश कुमार

वर्तमान युग में प्रकृति के साथ सामाजिक अन्त:क्रिया इतना व्यापक है कि पर्यावरणीय समस्यायें विकाराल रूप धारण कर चुकी हैं। मुख्यतया बढ़ती हुई गरीबी एवं आबादी, तीव्र औद्यौगिकरण, शहरी क्षेत्रों का विस्तार, शिक्षा की कमी, परम्परागत ऊर्जा एवं कच्चे मालों के स्त्रोतों का क्षरण, त्रुटिपूर्ण पर्यावरण नीतियाँ, जटिल न्यायिक प्रक्रिया, न्यायालय एवं कार्यपालिका द्वारा लिये गये निर्णयों के क्रियान्वयन में विलम्ब इत्यादि पर्यावरण ह्रास हेतु उत्तरदायी हैं।

पर्यावरण संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये प्रयासों में सर्वप्रथम सन् 1972 का स्टॉकहोम सम्मेलन शामिल है। तद्पोरान्त सन् 1992 में रियो में पृथ्वी सम्मेलन एवं सन् 2005 में जोहॉन्सवर्ग में सतत विकास पर सम्मेलन आयोजित किया गया। इन सम्मेलनों में सर्व सहमति से निर्णय लिया गया कि पर्यावरण संरक्षण हेतु एक साथ सार्थक प्रयास किये जायेगें एवं प्राकृतिक संसाधनों का दोहन सतत् विकास की परिसंकल्पनानुसार ही किया जायेगा तथा विश्व से गरीबी उन्मूलन हेतु प्रयास किया जाएगा। स्टॉकहोम सम्मेलन के लगभग चार वर्षों के पश्चात हमारे देश में संविधान का (बयालिसवाँ संशोधन)अधिनियम, 1976 के द्वारा संविधन संशोधन करके पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रावधनों को राज्य के नीति व निदेशक तत्व के अनुच्छेद 48क एवं मूल कर्तव्य के अनुच्छेद 51 (क) (छ) में जोड़ा गया जो निम्न प्रकार है-

''48क- पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन्य जीवों की रक्षा राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।''

51क- भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी, और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

इस सार्थक प्रयास के अतिरिक्त सन् 1974 में जल प्रदूषण के (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम (सन् 1981 में वायु के प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम तथा सन् 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम जैसे केन्द्रीय विधानों को परित किया गया। पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के क्षेत्र में भारतीय न्यायपालिका की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अर्न्तराष्ट्रीय पर्यावरणीय सिद्धान्तों में बदलाव[1] या बिना बदलाव[2] के राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित करना एवं स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को मूलाधिकार[3] का दर्जा देना सराहनीय प्रयास है। परन्तु उपरोक्त कथनो के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण के प्रति अनभिज्ञता थी। शायद भारतीय संस्कृति और परम्परा इस संदर्भ में विश्व की प्रथम संस्कृति और परम्परा होगी। आज हम धार्मिक भावनाओं से विरक्त होकर उन सभी वर्जनाओं की उपेक्षा कर रहे हैं जिन्हें हमारे ऋषियों ने सीख दी थी और आचरण में अनुपालन हेतु आदेश दिया था। फलत: प्रकृति के विपरीत कार्य हो रहा है और प्रकृति हमें दूषित वातारण में रहने हेतु विवश कर रही है।[4]

भूमि का संरक्षण एवं संवर्धन:

भारतीय धर्म संस्कृति और परम्पराओं में पर्यावरण को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। हमारी सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यताओं में से है। दुनिया की तमाम संस्कृति और सभ्यताओं का जब कोई अता-पता भी नही था उस समय भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। भारतीय द्रष्टाओं और ऋषियों ने अपने तपोबल के द्वारा प्रकृति के साथ तारतम्यता स्थापित कर लिया था, और उसी के अनुसार जीने की प्रणाली भी विकसित की थी। हमारी सभ्यता के अभ्युदय का मूल मंत्र भी यही था।

प्रकृति के मूलाधार पृथ्वी को माता के रूप में पूजा जाता है[5] । अनेक धर्म सम्प्रदाय एवं विविध भाषा-भाषी लोगों के रहने पर भी पृथ्वी अविचल भाव से खड़ी हुई लोगों का भरण-पोषण करती है और गाय की तरह सहस्त्रों लोगों को सहस्त्रों धाराओं से विश्वम्भरा बनकर अपनी कृपा-दुग्ध का पान कराती है।

सहस्त्र धारां द्रविणस्य में दुहां ध्रवेव धेनुरनपस्फुरन्ती[6] ।

इसीलिए पर्यावरण और प्रकृति के सभी कारकों-ग्रह, नक्षत्र, अंतरिक्ष, समुद्र जल, वायु, अग्नि और भूमि,

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-1, Year-1,

15 Jan-2010

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

-डॉ० राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कॉलेज, अगरा, उ.प्र.

www.shodh.net

वनस्पति सहित संपूर्ण ब्रहाण्ड और आकाश को मान-सम्मान देकर उनकी स्तुति गान करते हुए शान्ती की कामना की गई है -

ऊँ द्यौः! शान्तिरनरिक्षं शान्ति!

शान्तिरायः शान्तिशेषधयः शान्तिर्वनस्पतयः।।

शान्तिविंश्यतेदेवा शान्तिर्ब्रह्माशान्तिः सर्व शान्तिः।

शान्तिरेव शान्तिः सामा शन्तिरेधि।।[7]

हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास की यही कहानी पर्यावरण चेतना का भी प्रमाण है जो आगे चलकर हमारे जीवन शैली की आचार संहिता के साथ ही धर्म, संस्कृति और परम्परा के रूप में विकसित हुई। ऋग्वेद में इसे 'महीद्यौः पृथ्वी यच्छात्रः शर्मसप्रथेः' तथा 'देवोभिर्यजते'[8] कहा गया है। पृथ्वी को लोक धारिणी कह कर मृत्तिका प्रदायिनी मानकर यह प्रार्थना की गयी है कि मिट्टी खोदने या अन्य कोई दुष्कृत या पाप हुआ है उसे हे पृथ्वी तुम दूर करो और परम गति प्रदान करें। पृथ्वी को सावित्री, गायत्री इत्यादि से सम्बोधित कर उसके देवत्व को सिद्ध करते हुए सर्वभूतानां माता मेदिनी कहा गया है[9]। पृथ्वीसूक्त में प्रकृति के साथ समरसता बनाये रखने की पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है। वेदों में यह स्पष्ट निर्देश है कि पृथ्वी, आकाश, जल एवं औषधियों के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ न किया जाये-

'पृथिवीम् मा हिन्सेः, अनिर्रक्षमा हिन्सेः, आपो महोषधिरहिन्सेः।

अतः हमारा सिद्धान्त 'हमें देहि में ददामिते' 'अर्थात तुम मुझे तो मैं तुझे दूंगा' पर आधारित था। जो वर्तमान समय में सतत विकास की अवधारणा के नाम से जाना जाता है। रिओ सम्मेलन में जो चेतावनियाँ दी गयी हैं वे हमारे वेदों एवं उपनिषदों में बहुत पहले से रेखांकित है।[10] यह हमारा दुर्भाग्य है कि वेदों में प्रदूषण से सम्बन्धित जो स्वर्णिम सूत्र हैं हम उन्हें भूलते जा रहे हैं और मानवता के विनाश को आमंत्रण दे रहे हैं।[11]

प्राचीन भारत में जल का संरक्षण एवं संवर्धन :

जल जीवन का आधार है। अथर्ववेद में जल को अमृत कहा गया है- ''अवस्परतपमृतमप्सु''।

समस्त सृष्टि जल का स्वरूप है[12]। जल को शुद्धिकरण का सबसे बड़ा साधन माना गया है[13]।

अभ्दिर्गात्राणि शुद्धयान्ति मनः सत्येन शुद्धयति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुर्द्धिज्ञानेनं शुद्धयति।।[14]

ऋग्वेद में जल को 'शत् पवित्रा समुद्र ज्येष्ठा समुद्वार्था याः शुचयः' कहा गया है। आरोग्य के सरल उपायों की चर्चा करते हुए कहा गया हैं कि जल प्राणियों का प्राण है और सभी प्रकार की औषधियाँ जल में सुरक्षित हैं।

''सर्वेषाम भेषजम अप्सु में, जीवनां जीवनम् जीजोजगत''[15]

मनु ने भी जल को भौतिक शरीर की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना है तथा जल श्रोतों एवं जलाशयों को दूषित करने वाले व्यक्ति को दण्डित करने हेतु सुझाव दिया है।

'नात्सु मूत्रं पुरीषं वाष्ठीवनं वा समुत्सृजते। अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।'[16]

श्रीमद्भगवतगीता में श्री कृष्ण ने जल की महत्ता को समझाते हुए कहा है ''स्त्रोलसामस्मि जाान्हवी''[17] अर्थात नदियों में श्रेष्ठ भागीरथी -गंगा मैं ही हूँ।[18] जल की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कृष्ण द्वैपायन व्यास ने लिखा है कि गंगा दुग्ध के सदृश्य उज्वल, घृत के समान स्निग्ध जल से परिपूर्ण है इसका जल स्वाद युक्त, स्वच्छ, पथ्य, भोजन पचाने वाला, प्यास को मिटाने वाला, क्षुधा और बुद्धि वर्द्धक है।

शीतं स्वादु स्वच्छमत्यंतरूच्यं पथ्यं पाच्य पाचनं पापहारी ।

तृष्णा मोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम्।।[19]

हमारे प्राचीन ग्रंथों में बारह प्रकार के शारीरिक मल- चर्बी, वीर्य, रूधिर, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कान का मैल, नाखून, कफ, आंसू, आँख का कीचड़ और पसीना- बतलाऐ गये हैं तथा इन मलों को जल में न छोड़ने की शिक्षा दी गयी हैं।

वसाशुक्रमसृड् मज्जा-मूत्र विट्कर्ण विन्नखाः।

श्लेष्माश्रूदूशिका स्वेदा द्वादशैते मलानृणाम् ।।[20]

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-1, Year-1,

15 Jan-2010

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

-डॉ० राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कॉलेज, अगरा, उ.प्र.

www.shodh.net

गंगा नदी भारतीय धार्मिक परम्परा में गाय, गीता, गायत्री एवं गंगा की चतुष्पदी में से एक महत्त्वपूर्ण पाद है। इस विष्णुपाद सम्भूत ब्रह्मद्रव में अनिच्छा से स्नान करने वाला व्यक्ति भी अपने सभी पापों से मुक्त हो जाता है । इसीलिए कुर्म पुराण में कलि.'.....:युग के लिए गंगा को सर्वश्रेष्ठ पाप नाशक बताते हुए 'कलौगंगा विशिष्यते' कहा गया है। हमारे मनीषियों ने गंगा की अनेक प्रकार से प्रार्थना की है और स्नान करते समय हमारे पैरों से गंगा जल का स्पर्श होने के कारण जो पाप घटित होता है उसके लिए क्षमा प्रार्थना का पथ निर्दिष्ट किया है।

मातर देवि जगद्धात्रि: पादाभ्याम् सलिलंतव ।
स्पर्शा मित्यापराधं मे प्रसन्ना क्षन्तुमर्हसि ।।[21]

पद्मपुराण में गंगा तीर को मूत्र, पुरीळष्ण अश्लेष्मा निष्ठीवन, दूषिका, अश्रु अथवा मल से दूषित करने वाले को महान पातकी बतलाया गया है और ऐसे लोगों को नरकगामी कहा गया है। स्नानोपरान्त् जलस्रोतों में वस्त्र को निचोड़ना या दातून को फेंकना वर्जित है । सर्वोच्च न्यायालय ने एम0सी0 मेहता वनाम भारत संघ के वाद में नदियों के महत्त्व के विशेष रूप से गंगा नदी पर प्रकाश डालते हुए कहा :-

''गंगा नदी भारत के लाखों लोगों की जीवन धारा है। भारतीय संस्कृति उसी के आसपास पनपी है। यह महान नदी भारत के आठ राज्यों -हिमांचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार और बंगाल को जल प्रदान करती है। गंगा सदैव राष्ट्रीय -इतिहास का अभिन्न अंग रही है। अत: यह उन भागों के लाखों लोगों के जीवन यापन का स्त्रोत रही है जो इसके तट पर अनादिकाल से निवास करते रहें है।

प्राचीन भारत में वायु का संरक्षण एवं संवर्धन :

पृथ्वी का ऊपरी आवरण वायुमण्डल है। सामान्यतया हम जिसे हवा या वायु कहते हैं वास्तव में वह कई गैसों का मिश्रण है। जो प्रदूषित हो कर हानिप्रद हो गई है ।

भारतीय जीवन शैली मे यज्ञ की व्यवस्था है जो वायु मण्डलीय प्रदूषण को दूर कर पर्यावरण को शुद्ध रखता है। इसे सृष्टि चक्र का केन्द्र कहा गया है- 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:।' तथा 'भूमि पर्जन्या जिवलि, दिवं जिवन्त्यग्नय:।' यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है। गीता में भी यज्ञ की महत्ता को समझाते हुए यह उपदेश दिया गया है कि यज्ञ से देवताओं को प्रसन्न करो और देवगण जल वृष्टि से तुम्हे प्रसन्न करे । इस प्रकार परस्पर आदान प्रदान से तुम्हारी श्री वृद्धि हो।

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु व:।
परस्परं भावयन्त:, श्रेय: परमावाप्स्यथ ।।[22]

गीता के वायु को पवित्र करने वाला बताया गया है तथा श्री कृष्ण ने स्वंय ही वायु कहा है। वैसे भी वायु को पवन देवता के रूप में पूजा करने की परम्परा भारत में अनादि काल से चली आ रही है ।

पवन: पवतामस्मि राम: शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जान्हवी।।[23]

प्राचीन भारत में वनों एवं वृक्षों का संरक्षण एवं संवर्धन-

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं अध्यात्म का विकास वनों में स्थित ऋषि-आश्रमों के माध्यम से ही हुआ है जो भारतीय शिक्षा-दीक्षा के साथ ही राज्य के नीति नियंत्रक केन्द्र भी थे। गुप्त साम्राज्य के निर्माता और महान भारतीय द्रष्टा आचार्य चाणक्य वन प्रान्त के ही ऐसी एक पर्णकुटि में ही निवास और मनन-चिन्तन करते थे। वृक्ष, पर्वत, झरने, पशु-पक्षियों, नदियों एवं अन्य प्राकृतिक उपादानों को भारतीय परिवेश में ईश्वर का रूप माना गया है। ये मानव और कल कारखानों द्वारा उत्सर्जित विषाक्त वायु को प्राणवायु (आक्सीजन) में बदल कर मनुष्य ही नहीं बल्कि सृष्टि के समस्त जीवों को जीवन प्रदान करते हैं। भारतीय व्यवस्था में वृक्षों को रूद्र के रूप में देखा गया है एवं शास्त्रों में वृक्षों के पूजन हेतु विधान निर्धारित है। वृक्षों के इस देवत्व को प्रतिपादित करते हुये श्रीकृष्ण ने स्वंय को स्थावर हिमालय: अर्थात् स्थिर रहने वालों में हिमालय और वृक्षों में पीपल का वृक्ष कहा है। योगेश्वर श्रीकृष्ण के इस कथन से हिन्दू संस्कृति में वृक्षों का महत्त्व स्पष्ट होता है।

अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद:।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-1, Year-1,

15 Jan-2010

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

-डॉ० राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कॉलेज, अगरा, उ.प्र.

www.shodh.net

गन्धर्वाणां चित्ररथ: सिद्धानां कपिलो मुनि:।।[24]

ऐसे ही ऋगवेद के एक श्लोक में कहा गया है कि-

मां काकम्बीरमुहहो वनस्पतिन शस्तीतिर्वि हि नीनश:।

मोत सूरी अह एवा चन ग्रीवा आदधते वे:।।[25]

हमारे प्राचीन सभ्यता में वृक्षों को सजीव माना गया है एवं चिन्ता हरण करने वालों में सुमार किया गया है जो इस वैज्ञानिक युग में भी सत्य साबित हुआ है।

सुनहि विनय मम बिटप असोका।

सत्य नाम करू हरू मम सोका।।

नूतन किसलय अनल समाना।

दहि अगिनि जनि करहि निदाना।।[26]

प्राचीन काल में पर्यावरण सुरक्षा एवं संवर्धन हेतु व्यापक प्रबन्ध था। उन पेड़ों और पौधों को जो समाज हेतु विशिष्ट लाभप्रद थे तथा मानव कल्याणार्थ सर्वाधिक उपयोगी थे उनको पूजनीय पौधों की श्रेणी में रखा गया और धार्मिक आस्था से जोड़ दिया गया, जैसे तुलसी, पीपल, नीम, बरगद, आम इत्यादि।

वन्य-जीव प्रजातियों और पर्वतों को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है और पर्यावरण प्रबन्धन हेतु कुछ विशेष को स्वयं भगवान का रूप या वाहन बतलाया गया है। श्रीमद्भगवतगीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि पहाड़ो में हिमालय, वृक्षों में पीपल (अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां), में उच्चै:श्रवा, हाथियों में ऐरावत, गौओं में कामधेनु (धेनूनामस्मि कामधुक), नागों में शेषनाग, पशुओं में मृगराजसिंह, पक्षियों में गरूड़, मछलियों में मगर, पवित्र करने वालों में वायु एवं नदियों में श्री भागीरथी गंगाजी स्वयं हैं।

उच्चै: श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।

आयुधानामहं वज्र धेनूनामस्मि कामधुक।

प्रजनश्चास्मि कन्दर्प: सर्पाणामस्मि वासुकि:।।

अनन्तचास्मि नागानां वरूणों यादसामहम्।

पितृणामर्यमा चास्मि यम: संयमतामहम्।।

प्रह्लादश्चस्मि दैत्यानां काल: कलयतामहम्

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।[27]

प्राचीन भारत में लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता का संरक्षण एवं संवर्धन-

प्राचीन भारत में लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता का संरक्षण एवं संवर्धन के भी व्यापक प्रबन्ध किए गए थे। उपताप से बचने के लिए राजाज्ञा जारी किए थे तथा विधान द्वारा दण्ड का प्रावधान किया गया था। लोक मार्ग या राजमार्ग पर गंदगी फैलाने वाले व्यक्ति हेतु दो पन्ना का दण्ड निर्धारित था।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।

स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्।।[28]

कोई व्यक्ति जो तालाब, बगीचा में एवं पवित्र स्थानों पर गंदगी फैलाता था वह दण्ड के साथ-साथ गंदगियों को साफ करने हेतु जिम्मेदार होता था।

तटाकोद्यानतीर्थानि याऽमेध्येन विनाशयेत्।

अमेध्यं शोधयित्वा तु दण्डयेत्पूर्वसाहसम्।।

दूषयोत्सिद्वतीर्थानि स्थपितानि महात्मभि:।

पुण्यानि पावनीयानि प्राप्नुयात्पूर्व साहसम्।।

निष्कर्ष:

पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा अपने ही आधुनिक पुरोधाओं से है जो पाश्चात्य विद्वानों की व्याख्या के आगे नतमस्तक हैं और कालिदास के शब्दों में 'मूढ़: परप्रत्ययनेर' का पालन करते हैं। जहाँ तक परम्परा का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-1, Year-1,

15 Jan-2010

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

-डॉ० राकेश कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, आगरा कॉलेज, अगरा, उ.प्र.

www.shodh.net

प्रश्न है परम्परा, यह लोक जीवन से जुड़ी हुई है। हमारे यहाँ अनेकों स्मृतियाँ हैं, वेदों की व्याख्यायें कठिन हैं तथा धार्मिक कर्मकाण्ड इतने जटिल, श्रम, समय एवं व्यय साध्य हैं कि उनका अनुसरण करना कठिन होता है। ऐसे समय में परम्परा से प्राप्त धार्मिक प्रथायें ही अनुकरणीय है। मनु ने इसी बात को रेखांकित करते हुए कहा है:

येनास्यपितरोजाता:, येनयात पितामहा:।
तेन यायात सतां मार्गम् तेन गच्छत्र रिष्यते।।[30]

परम्परा वह ज्ञान, विश्वास या व्यवहार है जो पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को सम्प्रेषित किया जाता है। संस्कृति एवं परम्परा भारतीय जीवन की असम्र धारा है। परम्परा के अनुसार शिशु के जन्म लेने पर प्रसूतिका गृह के पास जली हई अग्नि पिण्ड एवं लोहे का रखा जाना तथा प्रसूतिका गृह में सबके प्रवेश पर निषेध, प्रदूषण एवं संक्रमण से जच्चा-बच्चा को बचाने की एक प्रक्रिया ही है। आधुनिक प्रसव केन्द्रों मे भी प्रवेश निषेध होता है और संक्रमण एवं प्रदूषण से मुक्ति के उपाय किये जाते हैं। इसी तरह शवयात्रा में जाने तथा शव का स्पर्श करने पर उन्ही वस्त्रों के साथ स्नान करने तथा घर लौटने पर अग्नि एवं लोहे का स्पर्श, नीम की पत्ती या मिर्च का भक्षण, प्रदूषण या संक्रामक रोगों से मुक्ति दिलाने का एक उपाय है। हमें आज के परिवेश में अपनी धार्मिक सांस्कृतिक, पारंपरिक परिपाटी की त्रिवेणी की धारा को अत्यन्त प्रवाहमान बनाने की आवश्यकता है। प्रदूषण करने वालों को नारकीय यातनाओं की याद दिलानी चाहिए तथा प्रदूषण से मुक्ति दिलाने वालों को सम्मानित करने की आवश्यकता है ताकि जहाँ विज्ञान असफल हो रहा है, (कानून पंगु हो रहा है वहाँ हमारी धर्म संस्कृति एवं परम्परा की अविरल धारा समस्त गन्दगियों को बहा ले जाये, मानव मन निर्मल हो और निर्मल मन से हम लोक कल्याण की भावना में रत होकर इस संकल्प को दुहरा सके कि प्रदूषण रहित वातावरण में जीवन यापन करना मानवता का सुन्दरतम पहलू है। धर्म हमारे जीवन का प्राण है। प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धामय होते हैं और उसकी श्रद्धा उसके स्वभाव का अनुसरण करती है इसलिए गीता में कहा गया है:

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरूषो यो यच्छ: स एव स: ।।[31]

सन्दर्भ

1. एम.सी.मेहता बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1987 सु0को0 965 (इण्डिन काउंसिल फार एन्विरो- लिगल एक्शन बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1996 सु0को0 1146 **2.** वेळोर सिटिजन्स वेलफेयर फोरम बनाम भारत संघ, (1996) 5 एस0सी0सी0 647 **3.** सुभाष कुमार वनाम विहार राज्य, ए0आई0आर0 1991 सु0को0 420 **4.** मीटिंग ग्राउण्ड वेदाज रण्ड रियो, दी टाईम्स आफ इण्डिया, 6जून, 2002, पृ. 14, (नई दिल्ली) **5.** अर्थववेद, 12/1/45('माता भूमि: पुत्रेहं पृथिव्या') **6.** तदर्थ **7.** यजुर्वेद 36/17/1 **8.** ऋग्वेद, 1/2/5 **9.** म्हानारायणोपनिषद, 3/28 **10.** यजुर्वेद 22/22/8 **11.** मीटिंग ग्राउण्ड, वेदाज रण्ड रियो, दी टाईम्स आफ इण्डिया, 6जून, 2002 पृ. 14, (नई दिल्ली)**12.** तैतरिय संहिता, 29/ 11(आपो वा इदं सर्वं विश्वोभूता न्याप: प्राणा वा आप:)**13.** तदर्थ, 29/12 'आप: शुन्धान्तु मनस:' मनुस्मृति, 1/ 9/15 **15.** युगधर्म से संकलित **16.** मनु स्मृति, 4/56(जल में मल मूत्र न त्यागे, थूके नहीं अथवा अन्य दूषित पदार्थ रक्त मांस या विष आदि न डालें। **17.** वही **18.** महाभारत, अनुशासन पर्व, 26/82 **19.** श्रीमद्भगवत गीता, विभूतियोग, 10/30 **20.** अथर्व वेद, 1/4/4 **21.** बौधायन सूत्र **22.** पद्मपुराण से संकलित **23.** श्रीमद्भगवत गीता, कर्मयोग, 3/11 **24.** तदर्थ, विभूतियोग, 10/31 **25.** वही, 10/26 **26.** ऋग्वेद 6/48/16 **27.** श्री रामचरित मानस, सुन्दर काण्ड, 10/13 **28.** श्रीमद्भगवत गीता, विभूतियोग, 10/27-30 **29.** मनु स्मृति, 9/282-83 **30.** कात्यायन, 758-759 **31.**महाभारत, अनुशासन पर्व, 26/82 **32.** श्रीमद्भगवत गीता, श्रद्धात्रयविभागयोग, 17/3